

अध्याय - ३१

मुक्ति-दान



(१) संन्यासी विजयानंद (२) बालाराम मानकर
(३) नूलकर (४) मेघा और (५) बाबा के सम्मुख
बाघ की मुक्ति

इस अध्याय में हेमाडपंत बाबा के सामने कुछ
भक्तों की मृत्यु तथा बाघ के प्राण-त्याग की कथा का
वर्णन करते हैं।

प्रारम्भ

मृत्यु के समय जो अंतिम इच्छा या भावना होती है, वही भवितव्यता का निर्माण करती है। श्रीकृष्ण ने गीता (अध्याय ८) में कहा है कि जो अपने जीवन के अंतिम क्षण में मुझे स्मरण करता है, वह मुझे ही प्राप्त होता है तथा उस समय वह जो कुछ भी दृश्य देखता है, उसी को अन्त में पाता है। यह कोई भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कह सकता कि उस क्षण हम केवल उत्तम विचार ही कर सकेंगे। जहाँ तक अनुभव में आया है, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अनेक कारणों से भयभीत होने की संभावना अधिक होती है। इसके अनेक कारण हैं। इसलिये मन को इच्छानुसार किसी उत्तम विचार के चिंतन में ही लगाने के लिए नित्याभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण सभी संतों ने हरिस्मरण और जप को ही श्रेष्ठ बताया है, ताकि मृत्यु के समय हम किसी घरेलू उलझन में न पड़ जायें। अतः ऐसे अवसर पर भक्तगण पूर्णतः सन्तों के शरणागत हो जाते हैं, ताकि संत, जो कि सर्वज्ञ हैं, उचित पथप्रदर्शन कर हमारी यथेष्ट सहायता करें। इसी प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) विजयानन्द

एक मद्रासी संन्यासी विजयानंद मानसरोवर की यात्रा करने निकले। मार्ग में वे बाबा की कीर्ति सुनकर शिरडी आये, जहाँ उनकी भेंट हरिद्वार के सोमदेव जी स्वामी से हुई

और इनसे उन्होंने मानसरोवर की यात्रा के सम्बन्ध में पूछताछ की। स्वामीजी ने उन्हें बताया कि गंगोत्री से मानसरोवर ५०० मील उत्तर की ओर है तथा मार्ग में जो कष्ट होते हैं, उनका भी उल्लेख किया जैसे कि बर्फ की अधिकता, ५० कोस तक भाषा में भिन्नता तथा भूटानवासियों के संशयी स्वभाव, जो यात्रियों को अधिक कष्ट पहुँचाया करते हैं। यह सब सुनकर संन्यासी का चित्त उदास हो गया और उसने यात्रा करने का विचार त्यागकर मसजिद में जाकर बाबा के श्री चरणों का स्पर्श किया। बाबा क्रोधित होकर कहने लगे - "इस निकम्मे संन्यासी को निकालो यहाँ से। इसका संग करना व्यर्थ है।" संन्यासी बाबा के स्वभाव से पूर्ण अपरिचित था। उसे बड़ी निराशा हुई, परन्तु वहाँ जो कुछ भी गतिविधियाँ चल रही थीं, उन्हें वह बैठे-बैठे ही देखता रहा। प्रातःकाल का दरबार लोगों से ठसाठस भरा हुआ था और बाबा को यथाविधि अभिषेक कराया जा रहा था। कोई पाद-प्रक्षालन कर रहा था तो कोई चरणों को छूकर तथा कोई तीर्थस्पर्श से अपने नेत्र सफल कर रहा था। कुछ लोग उन्हें चन्दन का लेप लगा रहे थे तो कोई उनके शरीर में इत्र ही मल रहा था। जातिपाँति का भेदभाव भुलाकर सब भक्त यह कार्य कर रहे थे। यद्यपि बाबा उसपर क्रोधित हो गये थे तो भी संन्यासी के हृदय में उनके प्रति बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया था। उसे यह स्थान छोड़ने की इच्छा ही न होती थी। दो दिन के पश्चात् ही मद्रास से पत्र आया कि उसकी माँ की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक है, जिसे पढ़कर उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपनी माँ के दर्शन की इच्छा करने लगा; परन्तु बाबा की आज्ञा के बिना वह शिरडी से जा ही कैसे सकता था? इसलिये वह हाथ में पत्र लेकर उनके समीप गया और उनसे घर लौटने की अनुमति माँगी। त्रिकालदर्शी बाबा को तो सबका भविष्य विदित ही था। उन्होंने कहा कि "जब तुम्हें अपनी माँ से इतना मोह था तो फिर संन्यास धारण करने का कष्ट ही क्यों उठाया? ममता या मोह भगवा वस्त्रधारियों को क्या शोभा देता है? जाओ, चुपचाप अपने स्थान पर रहकर कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताओ। परन्तु सावधान! वाड़े में चोर अधिक हैं। इसलिए द्वार बंद कर सावधानी से रहना, नहीं तो चोर सब कुछ चुराकर ले जायेंगे। 'लक्ष्मी' यानी संपत्ति चंचला है और यह शरीर भी नाशवान् है, ऐसा ही समझ कर इहलौकिक व पारलौकिक समस्त पदार्थों का मोह त्याग कर अपना कर्तव्य करो। जो इस प्रकार का आचरण कर श्रीहरि के शरणागत हो जाता है, उसका सब कष्टों से शीघ्र छुटकारा हो उसे परमानंद की प्राप्ति हो जाती है। जो परमात्मा का ध्यान व चिंतन प्रेम और भक्तिपूर्वक करता है, परमात्मा भी उसकी अविलम्ब सहायता करते हैं। पूर्वजन्मों के शुभ संस्कारों के फलस्वरूप ही तुम यहाँ पहुँचे हो और अब जो कुछ मैं

कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन के अंतिम ध्येय पर विचार करो। इच्छारहित होकर कल से भागवत का तीन सप्ताह तक पठन-पाठन प्रारम्भ करो। तब भगवान् प्रसन्न होंगे और तुम्हारे सब दुःख दूर कर देंगे। माया का आवरण दूर होकर तुम्हें शांति प्राप्त होगी।" बाबा ने उसका अंतकाल समीप देखकर उसे यह उपचार बता दिया और साथ ही 'रामविजय' पढ़ने की भी आज्ञा दी, जिससे यमराज अधिक प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन स्नानादि तथा अन्य शुद्धि के कृत्य कर उसने लेंडी बाग के एकांत स्थान में बैठकर भागवत का पाठ प्रारम्भ कर दिया। दूसरी बार का पठन समाप्त होने पर वह बहुत थक गया और वाड़े में आकर दो दिन ठहरा। तीसरे दिन बड़े बाबा की गोद में उसके प्राण पखेरू उड़ गये। बाबा ने दर्शनों के निमित्त एक दिन के लिए उसका शरीर सँभाल कर रखने के लिये कहा। तत्पश्चात् पुलिस आई और यथोचित जाँच-पड़ताल करने के उपरान्त मृत शरीर को उठाने की आज्ञा दे दी। धार्मिक कृत्यों के साथ उसकी उपयुक्त स्थान पर समाधि बना दी गई। बाबा ने इस प्रकार संन्यासी की सहायता कर उसे सद्गति प्रदान की।

(२) बालाराम मानकर

बालाराम मानकर नामक एक गृहस्थ बाबा के परम भक्त थे। जब उनकी पत्नी का देहांत हो गया तो वे बड़े निराश हो गये और सब घरबार अपने लड़के को सौंप वे शिरडी में आकर बाबा के पास रहने लगे। उनकी भक्ति देखकर बाबा उनके जीवन की गति परिवर्तित कर देना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उन्हें बारह रुपये देकर मच्छिंद्रगढ़ (जिला सातारा) में जाकर रहने को कहा। मानकर की इच्छा उनका सान्निध्य छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने की न थी, परन्तु बाबा ने उन्हें समझाया कि "तुम्हारे कल्याणार्थ ही मैं यह उत्तम उपाय तुम्हें बतला रहा हूँ। इसलिये वहाँ जाकर दिन में तीन बार प्रभु का ध्यान करो।" बाबा के शब्दों में विश्वास कर वह मच्छिंद्रगढ़ चला गया और वहाँ के मनोहर दृश्यों, शीतल जल तथा उत्तम पवन और समीपस्थ दृश्यों को देखकर उसके चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। बाबा द्वारा बतलाई विधि से उसने प्रभु का ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ दिनों के पश्चात् ही उसे दर्शन प्राप्त हो गया। बहुधा भक्तों को समाधि या तुरीयावस्था में ही दर्शन होते हैं, परन्तु मानकर जब तुरीयावस्थासे प्राकृतावस्था में आया, तभी उसे दर्शन हुए। दर्शन होने के पश्चात् मानकर ने बाबा से अपने को वहाँ भेजने का कारण पूछा। बाबा ने कहा कि "शिरडी में तुम्हारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे थे। इसी कारण मैंने तुम्हें वहाँ भेजा कि तुम्हारे चंचल मन को शांति प्राप्त हो। तुम्हारी धारणा थी कि मैं शिरडी में ही विद्यमान हूँ और सादेतीन

हाथ के इस पंचतत्व के पुतले के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, परन्तु अब तुम मुझे देखकर यह धारणा बना लो कि जो तुम्हारे सामने शिरडी में उपस्थित है और जिसके तुमने दर्शन किये, वह दोनों अभिन्न हैं या नहीं। मानकर वह स्थान छोड़कर अपने निवास स्थान बाँद्रा को रवाना हो गया। वह पूना से दादर रेल द्वारा जाना चाहता था। परन्तु जब वह टिकट-घर पर पहुँचा तो वहाँ अधिक भीड़ के कारण वह टिकट खरीद न सका। इतने में ही एक देहाती, जिसके कंधे पर एक कम्बल पड़ा था तथा शरीर पर केवल एक लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न था, वहाँ आया और मानकर से पूछने लगा कि "आप कहाँ जा रहे हैं?" मानकर ने उत्तर दिया कि मैं दादर जा रहा हूँ। तब वह कहने लगा कि "मेरा यह दादर का टिकट आप ले लीजिये, क्योंकि मुझे यहाँ एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मेरा जाना आज न हो सकेगा।" मानकर को टिकट पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और अपनी जेब से वे पैसे निकालने लगे। इतने में ही टिकट देने वाला आदमी भीड़ में कहीं अदृश्य हो गया। मानकर ने भीड़ में पर्याप्त छानबीन की, परन्तु सब व्यर्थ ही हुआ। जब तक गाड़ी नहीं छूटी, मानकर उसके लौटने की ही प्रतीक्षा करता रहा, परन्तु वह अन्त तक न लौटा। इस प्रकार मानकर को इस विचित्र रूप में द्वितीय बार दर्शन हुए। कुछ दिन अपने घर ठहरकर मानकर फिर शिरडी लौट आया और श्रीचरणों में ही अपने दिन व्यतीत करने लगा। अब वह सदैव बाबा के वचनों और आज्ञा का पालन करने लगा। अन्ततः उस भाग्यशाली ने बाबा के समक्ष ही उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने प्राण त्यागे।

(३) तात्यासाहेब नूलकर

हेमाडपंत ने तात्यासाहेब नूलकर के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं लिखा है। केवल इतना ही लिखा है कि उनका देहांत शिरडी में हुआ था। 'साईलीला' पत्रिका में संक्षिप्त विवरण प्रकाशित हुआ था, जो नीचे उद्धृत है— "सन् १९०९ में जिस समय तात्यासाहेब पंढरपुर में उपन्यायाधीश थे, उसी समय नानासाहेब चांदोरकर भी वहाँ के मामलतदार थे। ये दोनों आपस में बहुधा मिला करते और प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया करते थे। तात्यासाहेब सन्तों में अविश्वास करते थे, जबकि नानासाहेब की सन्तों के प्रति विशेष श्रद्धा थी। नानासाहेब ने उन्हें साईबाबा की लीलाएँ सुनाई और एक बार शिरडी जाकर बाबा का दर्शन-लाभ उठाने का आग्रह भी किया। वे दो शर्तों पर चलने को तैयार हुए—

(१) उन्हें ब्राह्मण रसोइया मिलना चाहिए; (२) भेंट के लिए नागपुर से उत्तम संतरे आना चाहिए। शीघ्र ही ये दोनों शर्तें पूर्ण हो गईं। नानासाहेब के पास एक ब्राह्मण

नौकरी के लिये आया, जिसे उन्होंने तात्यासाहेब के पास भिजवा दिया और एक संतरे का पार्सल भी आया, जिसपर भेजने वाले का कोई पता न लिखा था। उनकी दोनों शर्तें पूरी हो गई थीं। इसलिए अब उन्हें शिरडी जाना ही पड़ा। पहले तो बाबा उनपर क्रोधित हुए, परन्तु जब धीरे-धीरे तात्यासाहेब को विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही ईश्वरावतार हैं तो वे बाबा से प्रभावित हो गये और फिर जीवनपर्यन्त वहीं रहे। जब उनका अन्तकाल समीप आया तो उन्हें पवित्र धार्मिक पाठ सुनाया गया और अंतिम क्षणों में उन्हें बाबा का पदतीर्थ भी दिया गया। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर बाबा बोल उठे - "अरे! तात्या तो आगे चला गया। अब उसका पुनः जन्म नहीं होगा।"

(४) मेघा

२८ वें अध्याय में मेघा की कथा का वर्णन किया जा चुका है। जब मेघा का देहांत हुआ तो सब ग्रामवासी उनकी अर्थी के साथ चले और बाबा भी उनके साथ सम्मिलित हुए तथा उन्होंने उसके मृत शरीर पर फूल बरसाये। दाह-संस्कार होने के पश्चात् बाबा की आँखों से आँसू गिरने लगे। एक साधारण मनुष्य के समान उनका भी हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया। उनके शरीर को फूलों से ढँककर एक निकट सम्बन्धी के सदृश सेते-पीटते वे मसजिद को लौटे। सद्गति प्रदान करते हुए अनेक संत देखने में आये हैं, परन्तु बाबा की महानता अद्वितीय ही है। यहाँ तक कि बाघ सरीखा एक हिंसक पशु भी अपनी रक्षा के लिए बाबा की शरण में आया, जिसका वृत्तान्त निम्नलिखित है:-

(५) बाघ की मुक्ति

बाबा के समाधिस्थ होने के सात दिन पूर्व शिरडी में एक विचित्र घटना घटी। मसजिद के सामने एक बैलगाड़ी आकर रुकी, जिसपर एक बाघ जंजीरों से बँधा हुआ था। उसका भयानक मुख गाड़ी के पीछे की ओर था। वह किसी अज्ञात पीड़ा या दर्द से दुःखी था। उसके पालक तीन दरवेश थे, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में जाकर उसका नित्य प्रदर्शन करते और इस प्रकार यथेष्ट द्रव्य संचय करते थे और यही उनके जीविकोपार्जन का एक साधन था। उन्होंने उसकी चिकित्सा के सभी प्रयत्न किये, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ। कहीं से बाबा की कीर्ति भी उनके कानों में पड़ गई और वे बाघ को लेकर साई दरबार में आये। हाथों से जंजीरें पकड़कर उन्होंने बाघ को मसजिद के दरवाजे पर खड़ा कर दिया। वह स्वभावतः ही भयानक था, पर रुग्ण होने के कारण वह बेचैन था। लोग भय और आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखने लगे। दरवेश अन्दर आये और बाबा को सब हाल बताकर उनकी आज्ञा लेकर वे बाघ को उनके सामने

लाये। जैसे ही वह सीढ़ियों के समीप पहुँचा, वैसे ही बाबा के तेजःपुंज स्वरूप का दर्शन कर एक बार पीछे हट गया और अपनी गर्दन नीचे झुका दी। जब दोनों की दृष्टि आपस में एक हुई तो बाघ सीढ़ी पर चढ़ गया और प्रेमपूर्ण दृष्टि से बाबा की ओर निहारने लगा। उसने अपनी पूँछ हिलाकर तीन बार जमीन पर पटकी और फिर तत्क्षण ही अपने प्राण त्याग दिये। उसे मृत देखकर दरवेशी बड़े निराश और दुःखी हुए। तत्पश्चात् जब उन्हें बोध हुआ तो उन्होंने सोचा कि प्राणी रोगग्रस्त था ही और उसकी मृत्यु भी सन्निकट ही थी। चलो, उसके लिए अच्छा ही हुआ कि बाबा सरीखे महान् संत के चरणों में उसे सद्गति प्राप्त हो गई। वह दरवेशियों का ऋणी था और जब वह ऋण चुक गया तो वह स्वतंत्र हो गया और जीवन के अन्त में उसे साई चरणों में सद्गति प्राप्त हुई। जब कोई प्राणी संतों के चरणों पर अपना मस्तक रखकर प्राण त्याग दे तो उसकी मुक्ति हो जाती है। पूर्व जन्मों के शुभ संस्कारों के अभाव में ऐसा सुखद अंत प्राप्त होना कैसे संभव है?

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥



अध्याय - ३२ ✓

गुरु और ईश्वर की खोज - उपवास अमान्य



इस अध्याय में हेमाडपंत ने दो विषयों का वर्णन किया है।

- (१) किस प्रकार अपने गुरु से बाबा की भेंट हुई और उनके द्वारा ईश्वरदर्शन की प्राप्ति कैसे हुई?
- (२) श्रीमती गोखले को जो तीन दिन से उपवास कर रही थीं, उसे पूरनपोली के भोजन कराये।

प्रस्तावना

श्री. हेमाडपंत वटवृक्ष का उदाहरण देकर इस गोचर संसार के स्वरूप का वर्णन करते हैं। गीता के अनुसार वटवृक्ष की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे को चारों ओर फैली हुई हैं। “ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्” (गीता पंद्रहवाँ अध्याय, श्लोक १)। इस वृक्ष के गुण पोषक और अंकुर इंद्रियों के भोग्य पदार्थ हैं। जड़ें जिनका कारणीभूत कर्म हैं, वे सृष्टि के मानवों की ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की रचना बड़ी ही विचित्र है। न तो इसके आकार, उद्गम और अन्त का ही भान होता है और न ही इसके आश्रय का। इस कठोर जड़ वाले संसार रूपी वृक्ष को, वैराग्य के अमोघ शस्त्र द्वारा नष्ट करने के हेतु किसी बाह्य मार्ग का अवलंबन करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि इस असार-संसार में आवागमन से मुक्ति प्राप्त हो। इस पथ पर अग्रसर होने के लिए किसी योग्य दिग्दर्शक (गुरु) की नितांत आवश्यकता है। चाहे कोई कितना ही विद्वान् अथवा वेद और वेदांत में पारंगत क्यों न हो, वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर नहीं पहुँच सकता, जब तक कि उसकी सहायतार्थ कोई योग्य पथप्रदर्शक न मिल जाये, जिसके पदचिह्नों का अनुसरण करने से ही मार्ग में मिलने वाले गह्वरों, खंदकों तथा हिंसक प्राणियों के भय से मुक्त हुआ जा सकता है और इस विधि से ही संसार-यात्रा सुगम तथा कुशलतापूर्वक पूर्ण हो सकती है। इस विषय में बाबा का

अनुभव, जो उन्होंने स्वयं बतलाया, वास्तव में आश्चर्यजनक है। यदि हम उसका ध्यानपूर्वक अनुसरण करेंगे तो हमें निश्चय ही श्रद्धा, भक्ति और मुक्ति प्राप्त होगी।

अन्वेषण

“एक समय हम चार सहयोगी मिलकर धार्मिक एवं अन्य पुस्तकों का अध्ययन कर रहे थे। इस प्रकार प्रबुद्ध होकर हम लोग ब्रह्म के मूलस्वरूप पर विचार करने लगे। एक ने कहा कि हमें स्वयं की ही जागृति करनी चाहिए। दूसरों पर निर्भर रहना हमें उचित नहीं है। इस पर दूसरे ने कहा कि जिसने मनोनिग्रह कर लिया है, वही धन्य है; हमें अपने संकीर्ण विचारों व भावनाओं से मुक्त होना चाहिए, क्योंकि इस संसार में हमारे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तीसरे ने कहा कि यह संसार सदैव परिवर्तनशील है। केवल निराकार ही शाश्वत है। अतः हमें सत्य और असत्य में विवेक करना चाहिए। तब चौथे (स्वयं बाबा) ने कहा कि केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई लाभ नहीं। हमें तो अपना कर्तव्य करते रहना चाहिए। दृढ़ विश्वास और पूर्ण निष्ठापूर्वक हमें अपना तन, मन, धन और पंचप्राणादि सर्वव्यापक गुरुदेव को अर्पण कर देना चाहिए। गुरु भगवान् है; सबका पालनहार है।

इस प्रकार वादविवाद के उपरांत हम चारों सहयोगी वन में, ईश्वर की खोज को निकले। हम चार विद्वान् बिना किसी से सहायता लिए केवल अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही ईश्वर की खोज करना चाहते थे। मार्ग में हमें एक बंजारा मिला, जिसने हम लोगों से पूछा कि “हे सज्जनो! इतनी धूप में आप लोग किस ओर प्रस्थान कर रहे हैं?” प्रत्युत्तर में हम लोगों ने कहा कि “वन की ओर!” उसने पुनः पूछा, “कृपया यह तो बतलाइये कि वन की ओर जाने का क्या उद्देश्य है?” हम लोगों ने उसे टालमटोल वाला उत्तर दे दिया। हम लोगों को निरुद्देश्य सघन भयानक जंगलों में भटकते देखकर उसे दया आ गई। तब उसने अति विनम्र होकर हम लोगों से निवेदन किया कि “आप अपनी गुप्त खोज का हेतु चाहे मुझे न बतलायें, किन्तु मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि मध्याह्न के प्रचण्ड मार्तण्ड की तीव्र किरणों की उष्णता से आप लोग अधिक कष्ट पा रहे हैं। कृपया यहाँ पर कुछ क्षण विश्राम कर जल-पान कर लीजिए। आप लोगों को सुहृदय तथा नम्र होना चाहिए। बिना पथ-प्रदर्शक के इस अपरिचित भयानक वन में भटकते फिरने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप लोगों की तीव्र इच्छा ऐसी ही है तो कृपया किसी योग्य पथ-प्रदर्शक को साथ ले लें।” उसकी विनम्र प्रार्थना पर ध्यान न देकर हम लोग आगे बढ़े। हम लोगों ने विचार किया कि हम स्वयं ही अपना लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ

हैं, तब फिर हमें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। जंगल बहुत विशाल और पथहीन था। वृक्ष इतने ऊँचे और घने थे कि सूर्य की किरणों का भी वहाँ पहुँच सकना कठिन था। परिणाम यह हुआ कि हम मार्ग भूल गये और बहुत समय तक यहाँ-वहाँ भटकते रहे। भाग्यवश हम लोग उसी स्थान पर पुनः जा पहुँचे, जहाँ से पहले प्रस्थान किया था। तब वही बंजारा हमें पुनः मिला और कहने लगा कि “अपने चातुर्य पर विश्वास कर आप लोगों को पथ की विस्मृति हो गई है। प्रत्येक कार्य में चाहे वह बड़ा हो या छोटा, मार्ग-दर्शक आवश्यक है। ईश्वर-प्रेरणा के अभाव में सत्पुरुषों से भेंट होना संभव नहीं। **भूखे रहकर कोई कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इसलिए यदि कोई आग्रहपूर्वक भोजन के लिए आमंत्रित करे तो उसे अस्वीकार न करो। भोजन तो भगवान का प्रसाद है, उसे ठुकराना उचित नहीं। यदि कोई भोजन के लिए आग्रह करे तो उसे अपनी सफलता का प्रतीक जानो।**” इतना कहकर उसने भोजन करने का पुनः अनुरोध किया। फिर भी हम लोगों ने उसके अनुरोध की उपेक्षा कर भोजन करना अस्वीकार कर दिया। उसके सरल और गूढ़ उपदेशों की परीक्षा किये बिना ही मेरे तीन साथियों ने आगे को प्रस्थान कर दिया। अब पाठक ही अनुमान करें कि वे लोग कितने अहंकारी थे। मैं क्षुधा और तृषा से अत्यंत व्याकुल था ही; बंजारे के अपूर्व प्रेम ने भी मुझे आकर्षित कर लिया। यद्यपि हम लोग अपने को अत्यंत विद्वान् समझते थे, परन्तु दया एवं कृपा किसे कहते हैं, उससे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे। बंजारा था तो एक शूद्र, अनपढ़ और गँवार; परन्तु उसके हृदय में महान् दया थी, जिसने बारबार भोजन के लिए आग्रह किया। **जो दूसरों पर निःस्वार्थ प्रेम करते हैं, सचमुच में वे ही महान् हैं।** मैंने सोचा कि इसका आग्रह स्वीकार कर लेना ज्ञान-प्राप्ति के हेतु शुभ आवाहन है और मैंने इसी कारण उसके दिये हुए रूखे-सूखे भोजन को आदर व प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया।

क्षुधा-निवारण होते ही क्या देखता हूँ कि गुरुदेव तुरंत ही समक्ष प्रगट हो गये और प्रश्न करने लगे कि “यह सब क्या हो रहा था?” घटित घटना मैंने तुरंत ही उन्हें सुना दी। उन्होंने आश्वासन दिया कि “**मैं तुम्हारे हृदय की समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर दूँगा, परन्तु जिसका विश्वास मुझ पर होगा, सफलता केवल उसी को प्राप्त होगी।** मेरे तीनों सहयोगी तो उनके वचनों पर अविश्वास कर वहाँ से चले गये। तब मैंने उन्हें आदरसहित प्रणाम किया और उनकी आज्ञा मानना स्वीकार कर लिया।” तत्पश्चात् वे मुझे एक कुएँ के समीप ले गये और रस्सी से मेरे पैर बाँधकर मुझे कुएँ में उलटा लटका दिया। मेरा सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। मेरा सिर जल से लगभग तीन फुट की

ऊँचाई पर था, जिससे न मैं हाथों के द्वारा जल ही छू सकता था और न मुँह में ही उसके जा सकने की कोई सम्भावना थी। मुझे इस प्रकार उलटा लटका कर वे न जाने कहाँ चले गये। लगभग चार-पाँच घंटों के उपरान्त वे लौटे और उन्होंने मुझे शीघ्र ही कुएँ से बाहर निकाला। फिर वे मुझसे पूछने लगे कि तुम्हें वहाँ कैसा प्रतीत हो रहा था? मैंने कहा कि “मैं परम आनन्द का अनुभव कर रहा था। मेरे समान मूर्ख प्राणी भला ऐसे आनन्द का वर्णन कैसे कर सकता है।” मेरा उत्तर सुन कर मेरे गुरुदेव अत्यंत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगाकर मेरी प्रशंसा की और मुझे अपने संग ले लिया। एक चिड़िया अपने बच्चों का जितनी सावधानी से लालन पालन करती है, उसी प्रकार उन्होंने मेरा भी पालन किया। उन्होंने मुझे अपनी शाला में स्थान दिया। कितनी सुन्दर थी वह शाला! वहाँ मुझे अपने माता-पिता की भी विस्मृति हो गई। मेरे अन्य समस्त आकर्षण दूर हो गये और मैंने सरलतापूर्वक बन्धनों से मुक्ति पाई। मुझे सदा ऐसा ही लगता था कि उनके हृदय से ही चिपके रहकर उनकी ओर निहारा करूँ। यदि उनकी भव्य मूर्ति मेरी दृष्टि में न समाती तो मैं अपने को नेत्रहीन होना ही अधिक श्रेयस्कर समझता! ऐसी प्रिय थी वह शाला कि वहाँ पहुँचकर कोई भी कभी खाली हाथ नहीं लौटा। मेरी समस्त निधि, धन, सम्पत्ति, माता, पिता या क्या कहूँ, वे ही मेरे सर्वस्व थे। मेरी इन्द्रियाँ अपने कर्मों को छोड़कर मेरे नेत्रों में केन्द्रित हो गईं और मेरे नेत्र उन पर। मेरे लिये तो गुरु ऐसे हो चुके थे कि दिन-रात मैं उनके ही ध्यान में निमग्न रहता था। मुझे किसी भी बात की सुध न थी। इस प्रकार ध्यान और चिंतन करते हुये मेरा मन और बुद्धि स्थिर हो गई। मैं स्तब्ध हो गया और उन्हें मानसिक प्रणाम करने लगा। अन्य और भी आध्यात्मिक केन्द्र हैं, जहाँ एक भिन्न ही दृश्य देखने में आता है। साधक वहाँ ज्ञान प्राप्त करने को जाता है तथा द्रव्य और समय का अपव्यय करता है। कठोर परिश्रम भी करता है, परन्तु अन्त में उसे पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। वहाँ गुरु अपने गुप्त ज्ञान-भंडार का अभिमान प्रदर्शित करते हैं और अपने को निष्कलंक बतलाते हैं। वे अपनी पवित्रता और शुद्धता का अभिनय तो करते हैं, परन्तु उनके अन्तःकरण में दया लेशमात्र भी नहीं होती है। वे उपदेश अधिक देते हैं और अपनी कीर्ति का स्वयं ही गुणगान करते हैं, परन्तु उनके शब्द हृदयवेधी नहीं होते, इसलिए साधकों को संतोष प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक आत्म-दर्शन का प्रश्न है, वे उससे कोसों दूर होते हैं। इस प्रकार के केंद्र साधकों को उपयोगी कैसे सिद्ध हो सकते हैं और उनसे किसी उन्नति की आशा कोई कहाँ तक कर सकता है? जिन गुरु के श्री चरणों का मैंने अभी वर्णन किया है, वे भिन्न प्रकार के ही थे। केवल उनकी कृपा-दृष्टि से मुझे स्वतः ही अनुभूति प्राप्त हो

गई तथा मुझे न कोई प्रयास और न ही कोई विशेष अध्ययन करना पड़ा। मुझे किसी भी वस्तु के खोजने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वरन् प्रत्येक वस्तु मुझे दिन के प्रकाश के समान उज्ज्वल दिखाई देने लगी। केवल मेरे वे गुरु ही जानते हैं कि किस प्रकार उनके द्वारा कुँएँ में मुझे उलटा लटकाना मेरे लिए परमानंद का कारण सिद्ध हुआ।

उन चार सहयोगियों में से एक महान् कर्मकांडी था। किस प्रकार कर्म करना और उससे अलिप्त रहना, यह उसे भली भाँति ज्ञात था। दूसरा ज्ञानी था, जो सदैव ज्ञान के अहंकार में चूर रहता था। तीसरा ईश्वर भक्त था जो कि अनन्य भाव से भगवान् के शरणागत हो चुका था तथा उसे ज्ञात था कि ईश्वर ही कर्ता है। जब वे इस प्रकार परस्पर विचार-विनिमय कर रहे थे, तभी ईश्वर सम्बन्धी प्रश्न उठ पड़ा तथा वे बिना किसी से सहायता प्राप्त किये अपने स्वतंत्र ज्ञान पर निर्भर रहकर ईश्वर की खोज में निकल पड़े। श्री साई, जो विवेक और वैराग्य की प्रत्यक्ष मूर्ति थे, उन चारों लोगों में सम्मिलित थे। यहाँ कोई शंका कर सकता है कि जब साई स्वयं ही ब्रह्म के अवतार थे, तब वे उन लोगों के साथ क्यों सम्मिलित हुए और क्यों उन्होंने इस प्रकार अविद्वत्तापूर्ण आचरण किया। जन-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने ऐसा आचरण किया। स्वयं अवतार होते हुए भी और यह दृढ़ धारणा कर कि अन्न ही ब्रह्म है, उन्होंने एक क्षुद्र बंजारे के भोजनको सहर्ष स्वीकार कर लिया तथा बंजारे के भोजन के आग्रह की उपेक्षा करने और बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करने वालों की क्या दशा होती है, इसका उनके समक्ष एक उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रुति (तैत्तिरीय उपनिषद्) का कथन है कि हमें माता, पिता तथा गुरु का आदरसहित पूजन कर धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए। ये चित्त-शुद्धि के मार्ग हैं और जब तक चित्त की शुद्धि नहीं होती, तब तक आत्मानुभूति की आशा व्यर्थ है। आत्मा इंद्रियों, मन और बुद्धि के परे है। इस विषय में ज्ञान और तर्क हमारी कोई सहायता नहीं कर सकते, केवल गुरु की कृपा से ही सब कुछ सम्भव है। धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति अपने प्रयत्न से हो सकती है, परन्तु मोक्ष की प्राप्ति तो केवल गुरुकृपा से ही सम्भव है। श्री साई के दरबार में तरह-तरह के लोगों का दर्शन होता था। देखो, ज्योतिषी लोग आ रहे हैं और भविष्य का बखान कर रहे हैं। दूसरी ओर राजकुमार, श्रीमान्, सम्पन्न और निर्धन, संन्यासी, योगी और गवैये दर्शनार्थ चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि एक अतिशूद्र भी दरबार में आता है और प्रणाम करने के पश्चात् कहता है कि "साई ही मेरे माँ या बाप हैं और वे मेरा जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा कर देंगे।" और भी अनेकों- तमाशा करने वाले, कीर्तन करने वाले, अंधे, पंगु, नाथपन्थी, नर्तक व अन्य मनोरंजन करने वाले दरबार में

आते थे, जहाँ उनका उचित मान किया जाता था और इसी प्रकार उपयुक्त समय पर, वह बंजारा भी प्रगट हुआ और जो अभिनय उसे सौंपा गया था, उसने उसको पूर्ण किया।

हमारे विचार से कुँएँ में ४-५ घंटे उलटे लटके रहना - इसे सामान्य घटना नहीं समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा कोई बिरला ही पुरुष होगा, जो इस प्रकार अधिक समय तक, रस्सी से लटकाये जाने पर कष्ट का अनुभव न कर परमानंद का अनुभव करे। इसके विपरीत उसे पीड़ा होने की ही अधिक संभावना है। ऐसा प्रतीत होता है कि समाधि-अवस्था का ही यहाँ चित्रण किया गया है। आनंद दो प्रकार के होते हैं - प्रथम ऐन्द्रिक और द्वितीय आध्यात्मिक। ईश्वर ने हमारी इंद्रियों व तन मन की प्रवृत्तियों की रचना बाह्यमुखी की है और जब वे (इंद्रियाँ और मन) अपने विषयपदार्थों में संलग्न होती हैं, तब हमें इन्द्रिय-चैतन्यता प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप हमें सुख या दुःख का पृथक् या दोनों का सम्मिलित अनुभव होता है, न कि परमानंद का। जब इंद्रियों और मन को उनके विषय पदार्थों से हटाकर अंतर्मुख कर आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब हमें आध्यात्मिक बोध होता है और उस समय के आनंद का मुख से वर्णन नहीं किया जा सकता। "मैं परमानंद में था तथा उस समय का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ?" इन शब्दों से ध्वनित होता है कि गुरु ने उन्हें समाधि अवस्था में रखकर चंचल इंद्रियों और मनरूपी जल से दूर रखा।

उपवास और श्रीमती गोखले

बाबा ने स्वयं कभी उपवास नहीं किया, न ही उन्होंने दूसरों को करने दिया। उपवास करने वालों का मन कभी शांत नहीं रहता, तब उन्हें परमार्थ की प्राप्ति कैसे संभव है? प्रथम आत्मा की तृप्ति होना आवश्यक है। भूखे रहकर ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि पेटमें कुछ अन्न की शीतलता न हो तो हम कोनसी आँख से ईश्वर को देखेंगे, किस जिह्वा से उनकी महानता का वर्णन करेंगे और किन कानों से उसको श्रवण करेंगे। सारांश यह कि जब समस्त इंद्रियों को यथेष्ट भोजन व शांति मिलती है तथा जब वे बलिष्ठ रहती हैं, तब ही हम भक्ति और ईश्वर-प्राप्ति की अन्य साधनाएँ कर सकते हैं, इसलिए न तो हमें उपवास करना चाहिये और न ही अधिक भोजन। भोजन में संयम रखना शरीर और मन दोनों के लिए उत्तम है।

श्रीमती काशीबाई कानिटकर (श्रीसाईबाबा की एक भक्त) से परिचयपत्र लेकर

श्रीमती गोखले, दादा केलकर के समीप शिरडी को आई। वे यह दृढ़ निश्चय कर के आई थीं कि बाबा के श्री चरणों में बैठकर तीन दिन उपवास करूँगी। उनके शिरडी पहुँचने के एक दिन पूर्व ही बाबा ने दादा केलकर से कहा कि “मैं शिमगा (होली) के दिनों में अपने बच्चों को भूखा नहीं देख सकता हूँ। यदि उन्हें भूखे रहना पड़ा तो मेरे यहाँ वर्तमान होने का लाभ ही क्या है?” दूसरे दिन जब वह महिला दादा केलकर के साथ मसजिद में जाकर बाबा के चरण-कमलों के समीप बैठी तो तुरंत बाबा ने कहा, “उपवास की आवश्यकता ही क्या है? दादा भट के घर जाकर पूरनपोली तैयार करो। अपने बच्चों को खिलाओ और स्वयं खाओ।” वे होली के दिन थे और इस समय श्रीमती केलकर मासिक धर्म से थीं। दादा भट के घर में रसोई बनाने के लिए कोई न था और इसलिए बाबा की युक्ति बड़ी सामयिक थी। श्रीमती गोखले ने दादा भट के घर जाकर भोजन तैयार किया और दूसरों को भोजन कराकर स्वयं भी खाया। कितनी सुंदर कथा है और कितनी सुंदर उसकी शिक्षा।

बाबा के सरकार

बाबा ने अपने बचपन की एक कहानी का इस प्रकार वर्णन किया—

जब मैं छोटा था, तब जीविका उपार्जनार्थ मैं बीडगाँव आया। वहाँ मुझे जरी का काम मिल गया और मैं पूर्ण लगन व उम्मीद से अपना काम करने लगा। मेरा काम देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे साथ तीन लड़के और भी काम करते थे। पहले का काम ५० रुपये का, दूसरे का १०० रुपये का और तीसरे का १५० रुपये का हुआ। मेरा काम उन तीनों से दुगुना हो गया। मेरी चतुराई देखकर सेठ बहुत ही प्रसन्न हुआ। वह मुझे अधिक चाहता था और मेरी प्रशंसा भी करता रहता था। उसने मुझे एक पूरी पोशाक प्रदान की, जिसमें सिर के लिए एक पगड़ी और शरीर के लिए एक शोला भी थी। मेरे पास वह पोशाक वैसी ही रखी रही। मैंने सोचा कि जो कुछ मनुष्य-निर्मित है, वह नाशवान् और अपूर्ण है, परन्तु जो कुछ मेरे सरकार द्वारा प्राप्त होगा, वही अन्त तक रहेगा। किसी भी मनुष्य के उपहार की उससे समानता संभव नहीं है। मेरे सरकार कहते हैं “ले जाओ” परन्तु लोग मेरे पास आकर कहते हैं “मुझे दो, मुझे दो।” जो कुछ मैं कहता हूँ, उसके अर्थ पर कोई ध्यान देने का प्रयत्न नहीं करता। मेरे सरकार का खजाना (आध्यात्मिक भंडार) भरपूर है और वह ऊपर से बह रहा है। मैं तो कहता हूँ कि खोदकर गाड़ी में भरकर ले जाओ। जो सच्ची माँ का लाल होगा, उसे स्वयं ही भरना चाहिये। मेरे फकीर की कला, मेरे भगवान् की लीला और मेरे सरकार का बर्ताव

सर्वथा अद्वितीय है। मेरा क्या, यह शरीर मिट्टी में मिलकर सारे भूमंडल में व्याप्त हो जायेगा तथा फिर यह अवसर कभी प्राप्त न होगा। मैं चाहे कहीं जाता हूँ या कहीं बैठता हूँ, परन्तु माया फिर भी मुझे कष्ट पहुँचाती है। इतना होने पर भी मैं अपने भक्तों के कल्याणार्थ सदैव उत्सुक ही रहता हूँ। जो कुछ भी कोई करता है, एक दिन उसका फल उसको अवश्य प्राप्त होगा और जो मेरे इन वचनों को स्मरण रखेगा, उसे मौलिक आनन्द की प्राप्ति होगी।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

